अध्याय-द्वितीय
dिनकर के पौराणिक, ऐतिहासिक कथानकों
पर आधित काव्य में द्वन्द्व
1. कथ्यात्मक स्रोत परक द्वन्द्व
2. शिल्पात्मक प्रयोगपरक द्वन्द्व
कल्पनात्मक उद्योग पत्रक द्वारक

प्रस्तुत अध्याय में हमने दिनकर की उन रचनाओं पर विचार किया है जिनका आधार पौराणिक या ऐतिहासिक रूप है। उनके सभी प्रश्न काय्यों से कथा—स्रोत पुराणों से सम्बद्ध हैं। 'रश्मिरथी' और 'कुश्केत्र' में जहाँ कवि ने महामार्ग का आधार ग्रहण किया है, वहाँ 'उर्वरशी' में कवि ने पदम पुराण, 'ब्रह्मपुराण' आदि के द्वारा कथा—तन्त्रों को सम्बद्ध किया है। यही कारण है कि 'कुश्केत्र', 'रश्मिरथी' और 'उर्वरशी' को हमने यहाँ विवेचन का आधार बनाया है। तदनतर, जिन स्फुट कविताओं में पौराणिक या ऐतिहासिक तत्त्वों की प्रबंधन है उनका मूल्यांकन किया गया है। यहाँ यह निवेदन कर देना हम आवश्यक समझते हैं कि प्रस्तुत अध्याय में हमने पुराणाश्रित और ऐतिहासिक काय्यों की इतना अधिक स्थिति का विवेचन किया है।

उदाहरणार्थ 'उर्वरशी' के पौराणिक कथा स्रोतों की चर्चा जहाँ इस अध्याय में होने के साथ—साथ दिनकर ने किन परिस्थितियों में, किन इतना अधिक स्थिति में 'उर्वरशी' की रचना की।

भारत के सांस्कृतिक विकास में पुराणों की भूमिका अपने महत्वपूर्ण रही है। पुराण भारतीय संस्कृति और ऐतिहासिक की आधारमूल सामग्री तो प्रस्तुत करते ही हैं, साथ ही वेद—विद्या को जन—साधारण तक पहुँचाने में भी पुराणों का अभ्युदय का का प्रमुख योगदान रहा है। पुराण 'हिन्दू धर्म के सभी अंगों और स्तरों का पुराण—कथाओं, मूर्ति—पूजा, सेवकवाद और एकसेवकवाद, ईश्वर—भक्ति, दर्शन और पूर्वगाढ़, उत्सव और लोकहार तथा आचार का—किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा हमें कहीं अधिक गहन हास्य प्रदान करते हैं।'’

1. प्राचीन भारतीय साहित्य— एम. हिन्देनिल्ला, प्रथम भाग, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ-196
पुराणों में हमारी संस्कृति, जीवन और मेधा का गूढ संस्कृत सरल और रूचिकर रूप में प्रस्तुत हुआ है।

दिनकर स्वभाव से आत्मसिक कवि हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति उनके हदय में सम्मान और आस्था का भाव है। परिवारिक क़्लाह के कारण, सामाजिक शोषण, असमानता, ऊँच–नीच का भेदभाव, राजनैतिक विफलताओं ने उनके मस्तिष्क को हन्द्हालक बना दिया था। उनका हन्द्ह परिवार, सरकार और समाज से था। इसी कारण दिनकर ने पौराणिक सामग्री का उपयोग अपनी मानसिक परिस्थिति के अनुरूप किया है।

'प्रणभंग' दिनकर की प्रथम कृति हैं। इसीलिए डॉ॰ गोपाल राय ने लिखा है—'प्रण भंग दिनकर के काव्य की प्रथम उद्धार हैं।'  

इस छोटे से काव्य की रचना सन् 1928 में मैट्रिक पास करने के पश्चात ही की गई थी। इस कारण युवक कवि के इस काव्य में न विचारिक है, न प्रीढ़ता। लेकिन इतना अवश्य है कि इस लघु काव्य में ही उस विचार के बीज विधामान हैं, जिनका युद्ध 'कुरुक्षेत्र' के रूप में हमारे समुलुक आया तथा जिसने 'अनुद की विभीषित व जीवन–दर्शन को सापेक्ष रूप से समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है।

'प्रण–भंग' की कथा महाभारत से ली गई है। प्रारम्भ श्री कृष्ण के महल से होता है जहाँ दुर्योधन और अर्जुन कृष्ण को सेना सहित मौगने पहुंचते हैं और अपने अपने हित में युद्ध में ले जाना चाहते हैं। दुर्योधन और अर्जुन के मध्य बटबारा करने के निमित्त एक और श्रीकृष्ण की पूरी सेना, दूसरी और निहतें कृष्ण के रूप में कृष्ण ने दोनों से एक लेने को कहा।

1. राजूकवि दिनकर— डॉ॰ गोपाल राय, पृष्ठ–81
श्रीकृष्ण की सेना को अर्जुन ने नहीं लिया। अर्जुन ने निहते कृष्ण को लेना स्वीकार किया। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण की सेना लेना स्वीकार किया। महाभारत युद्ध में निहते कृष्ण अर्जुन के साथी बने। श्रीमद्भागिकाद्वार ने प्रण किया था कि मैं कृष्ण को शस्त्रग्रहण करा दूंगा अन्यथा वे अर्जुन की रक्षा नहीं कर पायेंगे। कथा अर्जुन और श्रीमण के युद्ध तक चलती है। श्रीमण अर्जुन के रथ को बाणों की मार से तोड़ भागते हैं। कृष्ण श्रीमण के विरुद्ध टूटे रथ के पहिये को उठाकर प्रण भंग करते हैं। कृष्ण का प्रण शस्त्र ग्रहण नहीं करने का था। वह प्रण भंग हो गया। कथा समाप्त हो जाती है।

युद्ध निर्दिष्ट कर्म-

'प्रणभंग' के रचना काल में दिनकर के शिष्य-मस्तिष्क में युद्ध निर्दिष्ट व झूठ कर्म है। इस प्रकार का विचार था। युद्ध के प्रति दिनकर का दृष्टांतक विचार था कि युद्ध भाई-बाई को लड़ाते हैं। उनके सत्यांतर का कारण बनता है। इसमें मनुष्य का ज्ञान लोप हो जाता है। युद्ध में खून-खराब, आहारों की चीतकर ही सर्वत्र व्याप्ति रहती है। युद्ध जन्म परिस्थितियों का चित्रण देखिये—

"आह! भाईयों ने भाई से ही प्रचरण खम ठोका था। प्रलय घड़ी थी घोर, वहाँ पर सर्वनाश का झोका था।" 1

युद्ध अच्छा होता है, जहाँ न विवेक है,
म बुझा, केवल एक रण भूत खून का,
प्रतिशोध का, विजय का स्वार्थ उभ्याद।
जहाँ शान्ति के स्थान पर द्रोह और कलह
tथा नीति के नाम पर कूटनीति और प्रणयंग होता है। खून और रण
के कर्कश स्वर और लहू की पुकार—
"हिय में हमारे जो बसी
कर्कश कसक—विद्रोह है।"\(^1\)

× × ×

"किस भौंि भूले भूलते
अब भी न वन के कलेश हैं।"\(^2\)

× × ×

"जब तक कर सकूंगा चीरकर
हद—रक उसका पान मैं।"\(^3\)

इस काव्य में दिनकर का एक अस्फुट विचार है जो इस कथा का
मुख्य विषय प्रतीत होता है; और वह है, साम्राज्यवाद तथा सामन्तवाद। इन
dोनों शासन परम्पराओं के मध्य भारतीय जनता, विशेषकर बिहार की
प्रकृति—पीड़ित जनता त्रस्त थी। उस समय विरोधी आन्दोलन थे— अहिंसा
वादी व उप्रभवादी। दिनकर का युवक कवि क्रांतिवादियों के संस्कारों से

1. प्रणयंग—दिनकर, पृष्ठ 18
2. वही, पृष्ठ 28
3. वही, पृष्ठ 31
अलंकृत हो रहा था। इसलिये उसने इन अत्याचारों के सहने की तथा अहिंसा की दुराई देने की सामर्थ्य नहीं थी। उसके अन्तर में ज्वाला थी, प्रचंड प्रतिशोध की। समाज की ऐसी दयानीय अवस्था में उसे गाँधी और उसके प्रतीक्षित युधिष्ठिर पसंद नहीं थे। उसे रचने के लिए इसका प्रतीत अर्जुन व श्रीम, जो इस कुल्लवस्था को बलपूर्वक उखाड़ फेंकने के लिए अधीर थे।

युधिष्ठिर का युद्ध की विरोधिका को देख शान्ति की बात करना दुर्भाराध्यपूर्ण है। शोषण और अत्याचारों की इस घोर परंपरा में गाँधी की अहिंसा की बात करना, दिनकर की दृष्टि में स्वजन हितकामना नहीं, अनिवार्य अपने श्रद्धा को बढ़ावा मात्र ही देना है। इसी कारण दिनकर श्रीम से उत्तर दिलाते हैं—

"इन कौरवों के ही किए
सब सामने संताप है।
फिर व्यर्थ ही इन दुर्वोरों से
मोह करते आप हैं।"\(^1\)

अर्जुन के मुख से दिनकर ने कहलाया—

"हे तात! कैसा आपका
इन कौरवों पर मोह है?
कैसा जग दुर्योधनादिक
दुष्ट पर अनुराग है?
हैं आप पड़ूँ मोह में,
फूटा हमारा भाग्य है।"\(^2\)

---

1. प्रणामंग— दिनकर, पृष्ठ 30
2. प्रणामंग— दिनकर, पृष्ठ 28
हितीय पद में अर्जुन का सम्बोधन अवश्य ही युग्मित्र की ओर है,
लेकिन यह दोनों ही पात्र प्रतिकालिक हैं। क्योंकि कवि के मुख्य लक्ष्य गांधी
हैं, जो सरकार के प्रति आन्दोलन को बापिस लेने की सलाह किसान और
mजजदूरों को देने लगे थे, तथा किसानों को बकाया लगाने की अदायगी के
लिए कहने लगे थे।

काव्य के अतिम चरण में कवि में एक दार्शनिक रूप का भी अंकुरण
hोता है। वह गीता को आधार मान, कर्म का प्रवल अनुयायी बनने का प्रयत्न
करता है। मोह वह भी युद्ध में, व्यक्त की बातें हैं--

"रण में दिखाते दीनता,
आती न तुमको लाज है।

तज मोह की बातें सभी,
शांती तीव्र धन्या पर धरो।"\(^1\)

कृष्ण के प्रणामद के समय दिनकर का निर्दिष्ट मर्मिक कुछ-कुछ
अनिश्चितता पर आ जाता है, तभी तो विचार भी अर्पित "हुआ अन्त उस
mहासमर-तम-तोम का, उषा सदृश आ मिली जरा-सी पार्थ को, पर केशव
dे वह कलंक अक्षय रहा, यदापि बचाने को केवल जन-स्वार्थ को।"\(^2\)

जन स्वार्थ यानी जनता के हित के लिये कृष्ण ने अपना प्रणंत्र कर
dिया कि मैं शस्त्र ग्रहण नहीं करूंगा। इस कारण गांधी जी को आन्दोलन में
kहीं कहीं हिंसा का पुट आ जाने के कारण आन्दोलन वापस नहीं लेना
चाहिये। उन्हें अपना अहिंसा का ब्रट तोड़ देना चाहिये। इस प्रकार दिनकर

1. प्रणंत्र-दिनकर, पृष्ठ-43
2. प्रणंत्र-दिनकर, पृष्ठ-50
ने गाढ़ी जी की ओर इश्नित करते हुए यह पद की अंतिम पंक्ति कही, ऐसा प्रतीत होता है।

दिनकर हीनाता ग्रहण को प्रतिषोध को द्वारा समाप्त कर देना चाहते हैं—

दिनकर की धारणा है कि शान्ति की बातें करने से युद्धिष्ठर के निर्वाद और पत्नी से शान्ति स्थापित नहीं हो सकती, अपितु शान्ति स्थापित करने का एक—मात्र साधन प्रतिषोध है। क्योंकि जब तक प्रतिषोध के द्वारा पापाचार समाप्त नहीं किया जाता, तब तक सच्चा शान्ति स्थापित नहीं हो सकती है। पापाचार को सही शान्ति स्थापना के लिए बाधक है। अगर स्वजनों की शान्ति प्रतिष्ठा के लिए प्रण—भंग भी करना पड़े तो कर देना चाहिए, भले ही नैतिक आदर्श पर वह कलंक कहलाये।

“पर, केशव का कृपापूर्ण प्रण—भंग ही,
इस छोटे—से पदम—पुष्प का अंत है।”

अस्तु यह स्पष्ट है कि दिनकर का अहम प्रबल था। उसका प्रकाशन हमें ‘प्रण भंग’ में अर्जुन और भीम के रूप में दृष्टिगोचर होता है, जिनमें क्रोध, प्रतिषोध और मृत्यु की भावनाओं का प्राधान्य है तथा भय का स्थान नाममात्र को भी नहीं है। संघर्ष व पुरुषार्थ ही उनका जीवन है। कर्म ही पुरुषार्थ है यथा—

“तो वीर—जीवन का कहाँ
रहता हमारा तत्त्व है?

1. प्रण भंग—दिनकर, पृष्ठ 50
इससे प्रकट होता यही

हमें न अब पुरुषत्व है।''

जीवन की चमीँद्र, अपने जीवन की अंतर्दृष्टि में लेकर दिनकर ‘कुरुक्षेत्र’ में उतरे—

दिनकर की मनोवृत्ति में काम, क्रोध, मोह और धैर्य का प्रमुख स्थान है। महाभारत के भीष्म में काम, क्रोध और मोह का स्थान नहीं है परंतु ‘कुरुक्षेत्र’ दिनकर के भीष्म में ये सभी मनोवृत्तियाँ न्यूनतम रूप में विद्यमान हैं, जिनके आधार पर उन्हें दिनकर का प्रतीक-पात्र कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए महाभारत के भीष्म बाल-ब्रह्मचारी थे तथा उनका काम से नाम का भी वास्ता नहीं था पर इसके विपरीत कुरुक्षेत्र के भीष्म में दिनकर की कोमल व सुकुमार भावनाएँ विद्यमान हैं जिनका भीष्म ने दमन किया है और वे इस तथ्य पर प्रायंपित करते प्रतीत होते हैं। भीष्म ने आजम ब्रह्मचारी रहने का योग किया था, लेकिन ऐसा करके उन्होंने अपने जीवन को दबाया तथा अपनी सुकुमार आकांक्षाओं का दमन किया जो दिनकर की दृष्टि से उपयुक्त नहीं। इसी कारण दिनकर का कोमल कवि, कुरुक्षेत्र के भीष्म से इसका प्रायंपित कराता है। यही तथ्य भीष्म की कुंज बनकर उभरता है, जोकि महाभारत के भीष्म से सर्वथा मिल्न है। ‘कुरुक्षेत्र’ के भीष्म को इस बाल का दुःख है कि उन्होंने जीवन में किसी से प्रेम न कर अत्यंत जीवन ही व्यतीत किया।

'वह अत्यूष्टि थी छिपी हदय के
किसी निर्धूप कोने में।

1. कुरुक्षेत्र-दिनकर, पृष्ठ-51
जा बैठा था अँख बचा,
जीवन चुपके दोने में।”

दिनकर की दृष्टि में प्रेम ही जीवन का उत्कर्ष है, जिसकी अनुपस्थिति में जीवन नीरव ही नहीं अपितु मृत्तिका है। दिनकर के भीष्म के हृदय में अतृप्त काम का हृन्द्व था। यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाये तो दिनकर का भीष्म युद्ध में लड़ने नहीं—अपितु एक प्रकार से किसी-न-किसी भौति अपने जीवन की खींचा, अपने जीवन की आन्तर्क्षिप्ति में लेकर आया था जो कि निम्नलिखित पंक्तियों से सुझाया है—

पर ना जानता था भीतर,
कोई माया चलती है।

भाव गर्व के गहन वितल में,
शिखा छन्न जलती है।

×    ×    ×

कुरुक्षेत्र में नहीं स्नेह पर
मैं भरने आया था।”

दिनकर की मनोवृत्तियों निवृत्ति मार्गी नहीं, अपितु प्रवृत्ति मार्गी है—

दिनकर के अनुसार सभी सांसारिक वस्तुएं भोग की सामग्री हैं, उनसे मुक्त पाना अनुभूषक है। दिनकर की यही वृत्ति भीष्म के रूप में युद्धित्र को

1. कुरुक्षेत्र—दिनकर, पृष्ठ 51
2. कुरुक्षेत्र—दिनकर, पृष्ठ 51
ऐसा ही उपदेश देती है। शारीरिक सुख वृत्ति नहीं है। अन्य दृष्टियों के विषय में निष्कल चिन्तन कर शरीर को कष्ट देना अनुपयुक्त है। उन भावों की कल्पना, जिसे शरीर उपलब्ध न कर सके, कल्पना मात्र है तथा मन के वे महत्त्व जिनमें शरीर निवास न कर सके, व्यर्थ हैं। इसलिए वह बुद्धि जो निरी कल्पना के विषय में ही विचार करे अथवा जिसका विचार-स्थल ही वृत्ति हो व्यर्थ है—

"ऊपर सब कुछ शून्य—शून्य है,
कुछ भी नहीं गगन में
धर्मराज्! जो कुछ है, वह है
मिद्द्वी में, जीवन में।" ¹

दिनकर का भोगवादी द्वार

झानमयी विकृति से चिन्ताओं का ह्रास नहीं होता और न ही संसार को छोड़ने में इच्छाओं का सामाधान है, अपितु मानसिक तुष्टि, शारीरिक तुष्टि से ही प्राप्त होती है। जो वस्तु शरीर को प्राप्त नहीं, उसी से मन को चिन्ता होती है, वहीं द्विधा का कारण बनती है। इसलिए दिनकर की भोगवादी वृत्ति भीष्म के शब्दों में यह उभरती है—

"मन का स्वर्ग मृत्यु वह, जिसको,
देह न पा सकती है।
इससे तो अच्छा वह जो कुछ,
भुजा बना सकती है।" ²

1. कुश्त्रेत— दिनकर, पृष्ठ 119
2. कुश्त्रेत— दिनकर, पृष्ठ 115

147
क्रोध दिनकर की मनोवृत्ति थी—

जिसका प्रक्षेपण उनके काव्य में अधिकांश स्थलों पर हुआ है, जिसका कारण उनका सामाजिक परिवेश था। 'कुरुक्षेत्र' में उनका आक्रोश ही प्रमुख रूप से उभर कर आया है। 'कुरुक्षेत्र' के शीष्य दिनकर की इसी वृत्ति का प्रतिपादन करते हैं, जो कि महाभारत के शीष्य से सर्वदा भिन्न है।

गीता में क्रोध को काम की भौति मनुष्य का शानु कहा है। यथा—

"क्रोधादशवति सम्मोहः सम्मोहात्सृष्टि विश्रमः।
स्मृति प्रशाशन बुद्धिनाशो बुद्धि नाशाप्रणश्यति।"

(अर्थात्, क्रोध से अत्यन्त मूर्धन्य उत्पन्न हो जाता है मूर्धन्य से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है। दूसरी की दृष्टि से मृतप्राय हो जाता है।)

लेकिन दिनकर इसे मान्यता नहीं देते हैं। उनकी दृष्टि में यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है जो कि व्यक्ति के जीवन के विकास के लिए परम आवश्यक है।

प्रतिशोधका आधार ही क्रोध है—

दिनकर के विचार से प्रतिशोध का आधार क्रोध है। प्रतिशोध से पौरुश का विकास होता है—

"प्रतिशोध से ही होती शौर्य की शिखाएँ दीप,
प्रतिशोध—हीनता नरों में महा पाप है।"

1. गीता, अध्याय 2, श्लोक 63
छोड़ प्रतिबैर पीते मूक अपमान वे ही,
जिनमें न शोष शूरता का वन्धु—ताप है।
हारी हुई जाति की सहीस्नुता अभिषाप है।’¹

अपने किसी भी काव्य में दिनकर ने बृक्ष पर और विवेक पर बल नहीं
दिया है। उनके अनुसार युद्ध में धर्म नहीं, क्योंकि धर्म शान्ति का उपदेश है,
लेकिन वह शान्ति आरोपित शान्ति है, मन की नहीं। 'कुरुक्षेत्र' में इसी शान्ति
को उखाड़ फेंकने का संकेत दिनकर ने दिया है तथा सांसारिक वस्तुओं को
सोग तथा शारीरिक उपलब्धियों को शून्य चिंतन के विपरीत श्रेष्ठ कहा है।

आक्रोश व प्रतिशोध दिनकर की मनोवृत्ति के दो मुख्य
लक्षण हैं—

दिनकर को अवसर की उपयुक्तता की परख है, वे युद्ध कालीन
धर्म—अधर्म को समझते हैं, उनकी दृष्टि में अवसर बलवान है, उसे खोना नहीं
चाहिए। इसीलिए निहले कर्ण पर अर्जुन से बार करने को कहते हैं—

"कर्तृवण, जो, पाल उसको, धर्म है यह।
हनन कर शानु का शक्तिम है यह।
क्रिया को छोड़ चिन्तन में पूर्ण,
उलटकर काल तुझको ही पूर्ण।"²

प्रतिशोध दिनकर की मनोवृत्ति है। उपयुक्त छन्द में दिनकर की इन्हीं
वृत्तियों का प्रक्षेपण है। दिनकर आवेग के कवि हैं, जिनमें चिन्तन की कमी है,
कर्म उनका प्रधान लक्षण है। इसी कारण कृष्ण मुख से वे निहल्ये कर्म पर वार करने को कहते हैं तथा इसे ही सत्कर्म बतलाते हैं। कृष्ण ही अर्जुन की ग्राहिणी को समझते हैं कि धर्म एक ही वर्ण की वस्तु नहीं, अतः उसका पालन सामने रूप से सभी को करना चाहिए। कोरों ने कोन से धर्म का सहारा लिया और कैसी-कैसी यातनाएँ पाण्डवों को नहीं सही पहुँचनी वस्तु।

इसलिए ऐसी स्थिति में धर्म की बात सोचकर मन को बले नहीं देना चाहिए।

अत: कृष्ण फिर अर्जुन से प्रतिशोध के लिए कहते हैं—

"शिथिल कर पार्थ! किंचित् भी न मन तू।

न धर्माधर्म में पड़ भीरू बन तू।

कड़ा कर वक्त को, शर मार इसको,
चढ़ा शायक, तुरंत सन्नाहर इसको।"\textsuperscript{1}

दिनकर सरकार के हाथों बिके थे—

कभी—कभी मनुष्य परिस्थितिवश प्रतिकूल राह पर चल देता है, ये परिस्थितियों उसे सद्भाव में चलने से रोकती है। मनुष्य सत्य और न्याय का पक्ष भी खुलकर नहीं ले पाता है। यदि इसी सद्भाव में हम देखे तो दिनकर के विश्व ओँ सू हमें भीम की ओँकों में दीख पड़ते हैं। दिनकर सामन्तवादी परम्परा में उसी सरकार के कर्मचारी थे जो देश में विप्लव का कारण थी।

उनका धदयंत्रत, पीड़ित जनमानस के साथ था, लेकिन उनके होटों पर जीवनपान की मुहर बन्द थी, शरीर से वे सरकार के हाथों बिके हुए थे—

ऐसी ही विषम स्थिति का चित्रण दिनकर भीम के मुख से कराते हैं—

\textsuperscript{1.} रशिमरथी—दिनकर, पृष्ठ—116
"सच है, था चाहता पाण्डवों
का हित में सम्बन्ध से।
पर दुर्योधन के हाथों में
बिका हुआ था तन से।" ¹

दिनकर भाग्यवाद के विशेषी थे—

दिनकर भाग्यवाद के कदंबर विशेषी थे। चूँकि सामन्तवादी युग में
भूमि पर राजाओं और उनके वंशजों का एकाधिकार था। जमींदारी प्रथा का
जन्मवंशवाद से था। भूमि पर अधिकार वंशवाद का ही था। इसके पीछे
दार्शनिक तत्त्व था कि श्रेष्ठ भाग्य के कारण व्यक्ति उच्चकुल और राज्यवंश
तथा जमींदारों के घर उत्पन्न होते हैं। लेकिन दिनकर ने भाग्य को छलना का
अपर रूप माना है। उसकी समझ में समूचे रस—समाज का भाग्य एक है और
वह है श्रम, भुजबल। व्यक्तिगत संचय सामाजिक चोरी है और चौर्य वृत्ति का
विनाश आवश्यक है। समाज में निरंक वोटर सभी को जीने का अधिकार
प्राप्त है—

" है सबको अधिकार मृति का,
पोषक—रस पीने का,
विविध अभावों से अर्जक हो—
कर जग में जीने का।" ²

1. कुर्मशेष—दिनकर, पृष्ठ 52
2. कुर्मशेष दिनकर, पृष्ठ 126
दिनकर ने कर्म को जीवन में अनिवार्य माना है—

उन्होंने 'कुरुक्षेत्र' में कर्म को अपरिहार्य माना है। जिस प्रकार तिलक
ने गीता को कर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादक ग्रंथ सिद्ध किया है, उसी प्रकार
dिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' के सप्तम सर्ग में निवृत्ति का खंडन और प्रृवृत्ति का
प्रतिपादन किया है—

"एक पथ है, छोड़ जगत् को
अपने में रम जाओ,
खोजो अपनी मुक्ति और
लिज को ही सुखी बनाओ।
अपर—पथ है औरों को भी,
निज विवेक बल देकर,
पहुँचो स्वर्ग—लोक में जग से
साथ बहुत को लेकर।"\(^1\)

कवि ने इस प्रृवृत्ति—मार्ग के द्वारा कर्मयोग की ओर संकेत किया है।

यथा—

"जनाकीर्ण जग से व्याकुल हो,
निकल भावना वन में,
धर्मराज, है घोर पराजय,
नर की जीवन—रण में।

यह निवृत्ति है ग्लानि, पलायन।

\(^1\) कुरुक्षेत्र दिनकर, पृष्ठ 148
का यह कुस्तित क्रम है,
निश्चयस यह भ्रमित, पराजय,
विजित बुद्धि का भ्रम है।"\(^1\)

निःवृत्ति मार्ग पर प्रकाश दालते हुए दिनकर ने सन्यास को अकर्मण्यता
की संज्ञा दी है—

"भ्रमा रही है तुमको विवक्ति जो,
वह अस्वस्थ, अब है,
अकर्मण्यता की छाया, वह
निरे ज्ञान का छल है।"\(^2\)

dिनकर निःवृत्ति ओर प्रवृत्ति के हन्सात्मक विचारों में प्रवृत्ति को श्रेष्ठ
मानते हैं और उन्होंने इसे जीवन के लिए सब प्रकार से श्रेयस्कर सिद्ध किया
है। संसार को त्यागकर आत्म-विकास की चेष्टा करना उत्तरन महत्वपूर्ण नहीं
है जितना महत्वपूर्ण संसार में हरकर अपने जीवन और अपने आस-पास के
मनुष्यों के जीवन को उत्तममुखी बनाना है। दिनकर की जीवन-निष्ठा भी
प्रवृत्ति मार्ग है। वैराग्य को वे पलन का पर्याय मानते हैं।

कवि कर्म की निर्पेक्ष स्थिति को स्वीकार करते हुए कहता है कि कर्म
अपने आप में निर्पेक्ष है। उसके शुम-अशुम का निर्णय करता की नावना पर
निर्माता करता है। वह अपने आप में न पाप है और न पुण्य। कर्म शुम होता है
जो शुम बुद्धि से किया जाय, चाहे वह युद्ध ही क्यों न हो। यही कारण है कि
बुद्धि में समरसता का समावेश कर लेने से व्यक्ति पाप और पुण्य से ऊँचा उठ।

1. कुश्त्रेत्र दिनकर, पृष्ठ 154
2. कुश्त्रेत्र दिनकर, पृष्ठ 158
जाता है। दिनकर ने 'कुरुक्शेत्र' में भीष्म के माध्यम से यहीं भाव व्यक्त करवाकर युधिष्ठिर की युद्ध-विषयक जिन्दाबाद का समाधान करने का प्रयत्न किया है—

“हे मृणा तेरे हृदय की जलना
युद्ध करना पुण्य या दुष्पाप है,
क्योंकि कोई कर्म है ऐसा नहीं,
जो स्वयं ही पुण्य हो या पाप हो।
सत्य ही भगवान ने उस दिनकहा,
मुख्य है कर्तार हृदय की भावना,
मुख्य है यह भाव, जीवन युद्ध में,
भिन्न हम कितना रहे निजकर्म से।”¹

कविक की दृष्टि में कर्म अनिवार्य है, उसे हेरे दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है। लेकिन उसका सम्पादन बुद्धि से ही होना चाहिए। 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म ने युधिष्ठिर को जिस कर्मस्योग का सन्देश दिया है, उनमें लोक-संग्रह की भावना विद्यमान है। उन्होंने कर्मयोगियों के लिये लोक-संग्रह की भावना को ही अभिनन्दनीय स्वीकार किया है—

“जिन को ही देखो युधिष्ठिर!
देखो निखिल भुवन को,
स्वतःशान्ति-सुख की ईहा में,
निरत, वयमेजन-जन को।”²

1. कुरुक्षेत्र-दिनकर, पृष्ठ 19–20.
2. कुरुक्षेत्र-दिनकर, पृष्ठ 149
जाओ, शमित करो निज ताप से,
नर के रागानल को
बरसाओ पीयूष, करो
अभिसित दम्ग भूतल को।”

“दिनकम कर भाग्यवाद को विलोकनी और पुरुषार्थ को
अमलिक हैं।”

पूर्व जन्म के कर्मों का फल किसी घटना में निहित रहता है अथवा
भाग्य जीवन की समस्त घटनाओं का नियमन करता है, इस मान्यता को
dिनकर हानिकारक मानते हैं। जो निखिल्य होते हैं वही कर्म से पलायन करते
है और दैव या भाग्य की बात कहते हैं। भाग्यवादी केवल अपने जीवन को ही
nिखिल्य और पलायन नहीं बनाता प्रत्युत्त वह अपनी निखिल्यता को उचित
सिद्ध करने के अभिप्रय से भाग्यवाद का प्रचार करता है। और इस प्रकार
सामाजिक जीवन को भी निखिल्य बनाता और विघटित करता है। पूर्व जन्म
के सुख अथवा दुःख प्राप्ति का तर्क देकर शोषक, शोषितों का शोषण करते हैं
और अपने शोषण—चक्र के विरूद्ध किसी को उठ खड़ा होने, मूंह खोलने का
अवसर नहीं देते। यही कारण है कि कवि पूर्व जन्म—कर्म—फल और भाग्यवाद
की निन्दा करता है—

“भाग्यवाद आवरण पाप का”

1. कुश्केत्र—दिनकर, पृष्ठ 173
2. खड़ी बोली के गौरव प्रथ्य, विश्वम्बर मानव, पृष्ठ 102
और शास्त्र शोषण का,
जिससे रखता दबा एक जन
भाग्य दूसरे जन का।" 1

शोषक अपने भाग्य को अच्छा कहकर, सुख-भोग करते हैं और
शोषितों को, बुरे भाग्य के कारण, दुःख भोगने के लिए छोड़ देते हैं। कवि की
समझ से अच्छे और बुरे भाग्य की माया शोषकों की स्वार्थ-वृद्धि से उत्पन्न
हुई है।— अतः खोखली है। वह कर्मशीलता को मानता है। कारण वह उसके
समुख प्रश्न्वृत्ति की कौन कहे आकाश तक का विनीत बनते देख चुका है—

"नर-समाज का भाग्य एक है
वह श्रम, वह भुज-बल है,
जिसके समुख शुक्री हुई—
पृथ्वी विनीत नभतल है।" 2

कर्ण भुजवल को भाग्य से भी अधिक बली मानता है और उसी से
संसार पर विजय पाना चाहता है। दिनकर कुरुक्षेत्र से बड़ा होना स्वीकार
नहीं करते हैं। वे कर्ण के मायम्य से कहते हैं—

"कुल-गोत्र नहीं साधन मेरा,
पुरुषार्थ एक बस धन मेरा,
कुल ने तो मुझे पॉक दिया,
मैंने हिम्मत से काम लिया।" 3

1. कुरुक्षेत्र-दिनकर, पृष्ठ 132
2. कुरुक्षेत्र-दिनकर, पृष्ठ 40
3. रामरेखि-दिनकर, पृष्ठ 40
दिनकर जानते-मानते हैं कि उद्धम, पौरुष में विधि के अंक, किस्मत के पाशे तक को पलट देने की क्षमता निहित है—

“बाहर को, पर कहीं भाग्य से बली मानता हूँ मुँ। महाराज, उद्धम से विधि का अंक पलट जाता है। किस्मत का पाशा पौरुष से हार पलट जाता है।”

फ़रायड़ की भावित दिनकर भी काम को ही परम पुरुषार्थ मानते थे—

दिनकर का मत है कि जीवन की गति धर्म से नहीं, अपिलु काम से ही है। इसलिये काम ही धर्म के स्थान पर मनुष्य का परम पुरुषार्थ है। दिनकर का काम के विषय में यह अभिमत तथा काम को आध्यात्म कहना साहित्य में विभिन्न क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का कारण बना। तद्वर्त, सर्वप्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि दिनकर ने काम का कौन सा रूप प्रस्तुत किया, जो कि साहित्य में विषय चर्चा का विषय बना, जिसने इस क्षेत्र में एक वैचारिक काल्पनिक उत्पन्न की।

दिनकर के काम रूपी मानसिक द्वन्द्व ने कामाध्यात्म की उत्पत्ति की—

“दिनकर नारी से ‘नानारव’ से आकाश मानव थे। इन्द्रिय के सुखों से उठी नाना-ध्वनियों को वे शरीर की शिराइयों से पीते थे और उससे आगे किसी अवक्ष अपूर्त आनन्द लोक में वे जीते भी थे।”

1. रशिमध्य— दिनकर, पृष्ठ 54
2. धर्मपुष्प— दिनकर— स्मृति अंक 29 सितंबर, 1974, लेखिका—कमलालाम, पृष्ठ 19.
महत्वपूर्ण हैं—एक—इन्द्रिय सुखों से उठी नाना ध्वनियों को शरीर की शिराओं से पीना, तथा दो—अपूर्व अव्यक्त आनन्द। जहाँ तक शारीरिक शिराओं का सम्बन्ध है, वह निश्चय ही नारी शरीर से सम्बन्धित है, तथा अव्यक्त आनन्द का सम्बन्ध उनके कल्पना जगत से लक्षित होता है, जिसका उत्कर्ष कामाध्यात्म में है। इन दोनों का संयुक्त रूप हमें 'उर्वशी' के पुरुष वा प्राप्त होता है, जिसे हम दिनकर कायम दिखाता है। उर्वशी की कथा वस्तु पौराणिक है तथा उसका मुख्यधारा कालिदास कृत—'विक्रमोवर्षीय' है। लेकिन कालिदास न दिनकर के पुरुष वा आकाश पाली का अन्तर है। 'विक्रमोवर्षीय' का पुरुष धीर और प्रतापी है, जबकि 'उर्वशी' के पुरुष में पर्युण किंचित् मात्र भी दृष्टिगत नहीं होते, उसमें अर्थात् आराध्य वाक्य भवना विद्यमान है, जिसकी वकालत दिनकर यथास्थान करते चले आये हैं। काम-चित्त दिनकर के पुरुष का मुख्य लक्षण है। वह अपनी प्रेयसर्सी से मिलने को व्याकुल है, परन्तु प्रयासीय नहीं। इसके अतिरिक्त प्रेयसर्सी के आलिंगन में बढ़ होकर भी मन से कहीं दूर चला जाता है जो प्रथ्य-नारी-भवना का प्रतीक है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि पुरुष ही दिनकर हैं।

'काम' के विषय में सर्वप्रथम दिनकर की अध्योपित

पंक्तियाँ ध्यात्मव्य हैं—

"रूप साकार कविता है और सौन्दर्य को लहर दर्शन की लहर से मिलती जुलती है। नारी मुकाराती है तब पृथ्वी पर स्वर्ग का दरवाजा खुल जाता है। नारी जब बोध बढ़ती है तब दृष्टि के आदर्श के बीच सेतु बन जाता है। मन में कल्पना का वहाँ भी कोई कव्स है, उसके दरवाजे पर एक
नारी है। जीवन में रस की जहाँ भी कोई धारा बहती है, उसके उत्स पर किसी रमणी का लाल-लाल पाँच है।’’

यह स्पष्ट है कि दिनकर कामानंद को केवल कायिक सुख नहीं मानते, अपितु वह आलोकिक आनन्द है। वह सहस्र मनुष्य को सुख की उस अनुभूति तक बहाकर देता है जो कि दर्शन का मुख्य उद्देश्य है। इसी तथ्य को उर्द्धशी में निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया गया है—

“यह अतिक्राप्ति वियोग नहीं, आलिंगन नर नारी का,
देह धर्म से परे अन्तरात्मा तक उठ जाना है।”

× × ×

ले जाना है यह समूल नगपति के तुँग शिखर पर,
वहाँ जहाँ कौलास प्रान्त में शिव प्रत्येक पुरुष है,
और शक्तिदामिनी शिवा प्रत्येक प्रणविनी नारी।’’

“मनुष्य के पास शक्ति का जो स्रोत है, उसे ही काम कहते हैं, इसके बूटे पर आदमी खेतों में हल जोतता है, फलक पर तृप्तिकाओं द्वारा रंग उड़ेलता है और मोक्ष एवं परमात्मा की ओर उन्मुख होता है। काम की शक्ति दुर्लभ शक्ति है, जीवन में जहाँ भी रस का स्रोत है, वहाँ काम की माया का ही प्रसार है।’’ काम ही अपने वृहद्ध अर्थ में जीवन है तथा समाज की वृक्षाला का कर्णधार, अपने सूक्ष्म अर्थ में यही प्रणय है, जीवन की सबसे मधुमय मुस्कान।

dर्शन में यही प्रकृति और परमेश्वर का मिलन है, जहाँ न समय है न साकार,

1. उर्द्धशी आग–दिनकर, पृष्ठ–23.
2. उर्द्धशी दिनकर, पृष्ठ–61.
3. व्योद्ध, दिनकर, दिशाशंक, डॉ विजयेन्द्र नारायण सिंह प्रो. 1974
जहाँ बिन्दु और ब्योम सभी एक हैं, बस एक ही आनन्द–सचिविदानन्द।

अध्यात्म आत्म–चित्त है, जिसे हम दूसरे शब्दों में दर्शन कहते हैं।

दर्शन वह मार्ग है जो कि दुःख, ध्वंस सुखानुभूति के मार्ग का अन्वेषण करता आगे चलता है। इसका मुख्य विषय आत्मा के लिए सुख की खोज है, न कि उसके लिए सुख और भोगों की निरूपण। दर्शन निरूपण को कहता ही कब है, वह तो आनन्द के द्वार खोजता और खोलता चलता है। वह काम का विध वंशक रूप नहीं अपितु व्यक्ति को व्यक्ति से मिलाता है, मोक्ष का सोपान है।

वही मोक्ष, जहाँ समय है न गति; जहाँ वाजा गहन अस्थायी के मध्य अन्तः ज्योति के पुँज पुलकित होते हैं; जहाँ मानव की सारदा समाधि है और वह अपने आप में खो जाता है। अतः दर्शन के मार्ग में आनन्द की ऊर्जा का कार्य भी काम ही करता है। काम अन्तः में आत्मा से प्रेम व परमात्मा से विलय की स्थिति है, अध्यात्म के नाम पर ल्यायाय नहीं, क्योंकि वही स्वयं में आत्म ज्योति भी है, आत्मा की शक्ति है।

अतः काम व अध्यात्म में विलगाव नहीं, वे एक दूसरे के सहगामी हैं।

उपर्युक्त तथा की पुस्ति दिनकर की निम्नलिखित पंक्तियों में होती है–

"यह विद्युन्मय स्पर्श तिमिर है पाकर जिसे त्वचा की, नींद टूट जाती, राहों में दीपक जल उठते हैं?

वह आतिशक अन्धकार है, जिसमें बंध जाने पर,

हम प्रकाश के महासिन्धु में उतराने लगते हैं,

और कहोगे तिमिर–षूल उस चुम्बन को भी जिससे,

जड़ता की ग्रथियाँ निखिल तन–मन की खुल जाती है।"
मनुष्य की आत्मालीन स्थिति क्या होती है? उसको समाधि-अवसथा क्या होती है? वह चंचल अचल है। समाधि में मनुष्य की बुद्धि तथा मन की चंचलता दोनों स्थिर और प्रायः लुप्त हो जाती है। वह समाधि की स्थिति में खोया हुआ अंबोध रहता है। आत्मा की यह अबोध निर्लिप्त अवसथा तथा मन का स्थितप्रव्रज होना अध्याय करना ही तो आध्यात्मिक का अमीष विषय है। मन की इसी शान्ति के लिए तो अर्जुन कृष्ण से गीता में उपाय सुझाने को कहते हैं। यथा—

“स्थित प्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशाव।
स्थिततर्था: किं प्रभाषेत किमासीतु ब्रजेत किम्।"”¹

अर्जुन बोले हैं केशाव! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त करते हुए स्थिर बुद्धि पुरुष का क्या लक्षण है? वह स्थिर बुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है। कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को भली-भाली व्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संसूचक रहता है, उस काल में वह स्थितप्रव्रज कहा जाता है। जहाँ पहुँचकर प्रत्येक नर का रूप कल्याणकारी शिव का रूप हो जाता है व प्रत्येक नारी शक्ति स्वरूप हो। जहाँ उसकी आत्मा परमात्मा से अंशमात्र ही नहीं वरन उसी में एक रूप हो जाती है। पुरुषवा उर्वरी के साथ इसी महसूल का उद्घाटन करता है जिसकी पृथ्वीभूमि दिनकर की आत्मिक अभियावति है–

“यह अतिक्रान्त वियोग नहीं शोभित के तपत ज्वलन का, परिवर्तन है सिन्धु शान्त दीपक की सौम्य शिखर में।
निन्दा नहीं प्रशासित प्रेम की छलना नहीं, समर्पण।

1. गीता अध्याय-2, श्लोक 54
त्याग नहीं संचय : उपत्यकाओं के कुसुम दुःमों को,
ले जाना है यह समूल नरमिति के सुंग शिखर पर।”

पुरुरवा के साथ उर्वशी को ऐसा अनुमान हुआ जैसे उद्गम पर बजते जल का नाद वह पहली बार सुन रही हो—

''प्रथम—प्रथम ही सुननाद उद्गम पर बजते जलका,
प्रथम—प्रथम ही आदि ऊषा की दुहति से भी गं रही हूँ।
तन की शिरा—शिरा में जो रागनियं बनदी बड़ी थी,
कौन तुम्हारे बिना उन्हें उन्मोचित कर सकता था।”

दिनकर की पत्नी और प्रेमसी का ज्ञान—

दिनकर की प्रेमिका पुरुरवा की प्रेमिका उर्वशी का रूप लेकर उभरी और दिनकर की पत्नी का रूप लेकर पुरुरवा की पत्नी ओशीनरी का उर्वशी' नाम प्रबंध काव्य में पदार्पण हुआ। दिनकर की पत्नी और प्रेमसी के रूप में ओशीनरी तथा उर्वशी का युद्ध है। दिनकर रूपी पुरुरवा इन दोनों के मध्य दम्यात आधुनिक व्यक्ति है, जो दोनों और देखता है लेकिन सफलता सदैव सफल व्यक्ति को ही मिलती है। पुरुरवा अपनी प्रेमिका उर्वशी को ही प्राप्त हुआ, न कि रानी ओशीनरी को। ओशीनरी के शब्दों में—

''पर क्या जाने ललक जगाना नर में गृहणी नारी।
जीत गयी अप्सरा सखी! में रानी बन कर हारी।’’

ओशीनरी मात्र आश्रित बन कर रह जाती है। उसमें आनन्द, शांति

1. उर्वशी—दिनकर, पृष्ठ 61
2. उर्वशी—दिनकर, पृष्ठ 62–63
3. उर्वशी—दिनकर, पृष्ठ 34
व ताजगी सभी का अभाव है, जबकि उर्वशी के व्यक्तित्व में तीनों का मिश्रण है। वह व्यवहारिक है, अपने पति के साथ कम्युनिटी में चल सकती है, उसे आनंदित कर सकती है तथा उसे ताजगी प्रदान कर सकती है। इन गुणों के न रहने पर ही ओशीनरी हार जाती है और दुख हुई कहती हैं—

"जीत गयी वे जो लहरों पर मचल—मचल चलती थी।
उड़ सकती थी खुली धूप में, मेघों भरे गagan में।
हारी में इसलिए कि मेरे ब्रंज्या—विकल द्रगों में,
खुली धूप की प्रभा, किरण कोलाहल की गड़बड़ी थी।" ¹
गृहस्थ जीवन का आधार नारी है नर नहीं। यह वह स्थल है जहाँ कर्म आश्रित होता है। सुकन्या ओशीनरी से कहती है—

"इसलिए दायित्व गहन—दुस्तर गृहस्थ नारी का
क्षण क्षण सजग, अनिद्र—वृष्टि देखना उसे होता है,
अभी कहाँ है व्यथा? समर से लौटे हुए पुरुष को,
कहाँ लगी है प्यास, प्राण में काँटे कहाँ चुमे हैं।" ²
ओशीनरी एक भारतीय नारी का रूप है। ओशीनरी की उक्ति
मनोवैज्ञानिक प्रथ्याश के भारतीय नारियों में प्रतिक्षण की जा सकती है। दिनकर
की तरह पुरुषा भी एक कामकृत्य व्यक्ति है। दिनकर अपनी पत्नी में भारतीय
नारी के गुण विद्यमान रहने देना चाहते है परन्तु वे प्रेमिकाओं को भारतीय
नारी के रूप में देखना पसन्द नहीं करते है इसी कारण दिनकर ने उर्वशी
ऐसी दिव्य अवस्था को चुना जो देवलोक की नाटकी है। उर्वशी का व्यक्तित्व

1. उर्वशी—दिनकर, पृष्ठ 153
2. उर्वशी—दिनकर, पृष्ठ 155
पूर्ण है, वह सबल, शाश्वत व आत्मविस्वास—पूर्ण है, वह ओशीनरी की तरह मूक आश्रिता नहीं है। वह प्रयोग के प्रत्येक स्वास्त का संग जानती है और उसी के अनुरूप रहती है। पुरुरवा के अंत: मन की पीढ़ा को समझ, उससे आलिगन को और दूःढ़ करते को कहलती है, पुरुरवा की मानसिक प्रशिक्षा को दूर कर, उसे एक ताजगी प्रदान करना चाहती है—

“पर में बाधक नहीं, जहाँ ही रहो, भूसि या मभ में,
बकसाठल पर इसी भाँति मेरा कपोल रहने दो।
कसे रहो बस, इसी भाँति उर—पीढ़क आलिगन में,
और चलाते रही अघर—पुट को कठोर चुम्बन से।”

प्रथम—प्रथम में पंक्तियों जरा अश्लील सी लगती है, परन्तु मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर यह मूल्यवान है, क्योंकि ये उर्वशी के परिपक्व मस्तिष्क का परिचय मात्र ही नहीं देती अपितु उसकी प्रिय—बोध ग्राहकता का भी परिचय देती है। वह दर्द समझ उपचार भी करती है जीव व परमात्मा के मध्य महासेतु बनकर, बाधक बनकर नहीं। पुरुरवा की दृष्टि में उर्वशी का यही रूप समाया हुआ है—

“सत्य ही रहता नहीं यह ज्ञान,
तुम कविता, कुसुम या कामिनी हो।”

दिनकर के प्रबन्ध—काव्यों में दिनकर के पाठों में कृष्ण (प्रणबंध), कर्ण (रसिम्बर्थी), बीमा (कुरुक्षेत्र) तथा पुरुरवा (उर्वशी) मुख्य हैं। संयोग वह दिनकर का भारतीय संस्कृति के प्रति अग्रणी प्रेम के कारण इन सभी के कथानक

1. उर्वशी—दिनकर, पृष्ठ 62
2. उर्वशी—दिनकर, पृष्ठ 50
प्राचीन पौराणिक हैं परन्तु उनके पात्रों में दिनकर की मानसिकता का पुट हैं जो दिनकर के चरित्र का प्रतिपादन करता है। दिनकर घन्ध्र के कवि थे। परिवार से घन्ध्र, पत्नी से घन्ध्र, सरकार से घन्ध्र, सर्वजनों से घन्ध्र, सामर्थ्यों से घन्ध्र रहा है। उसी के अनुरूप उन्होंने पौराणिक पात्रों के मुख से इन्हें घन्ध्रात्मक स्थितियों का निराकरण किया है।

शिल्पात्मक प्रयोगपन्तक घन्ध्र

दिनकर घन्ध्रात्मक कवि थे। उनके मन में भूखे मरने वाले कृषक और मजदूरों को देखकर सामन्तवादी व्यवस्था का घन्ध्र था। विदेशी सरकार शोषणवादी होने के कारण इस अन्याय के विरुद्ध भी वैचारिक घन्ध्र था। पत्नी से पत्ती नहीं थी। छोटी आयु में विवाह हो गया था। जब जबानी आई तो उनका आकर्षण एक अति मुन्दर कन्या के साथ हो गया। दिनकर सम्पूर्ण परिवार (बाबा की समस्त सम्पत्ति) का भार उठाते थे यही पत्नी को नागवार गुजरता था। पत्नी से मानसिक तनाव रहता था। फिर दिनकर पत्नी के साथ धर्म नहीं निभा पा रहे थे क्योंकि सारा घन परिवार पर व्यय होता था। इन्हीं कारणों से दिनकर की मानसिक सन्तुष्टि पत्नी नहीं कर पायी, जिसके कारण शारीरिक सन्तुष्टि के अवसर कम हो गये। दिनकर जी की इसी मानसिक घन्ध्रता के कारण शिल्पात्मक प्रयोग में एक रूपता नहीं रह पाई। चूंकि दिनकर के वैचारिक क्षेत्र में अनेक प्रकार के घन्ध्र थे। इस कारण दिनकर की भाषा आदि भी स्थायी स्थान पर उसी अनुरूप होती चली गई।

भाषा

सन् 1936 तक छायावादी काव्य भाषा की दृष्टि से भी चुक गया था। दूरापन कल्पना के भार--वहन हेतु छायावादी भाषा को भी बाहर का कार्य किया का...
अभ्यास हो गया था। इस भाषा के कृत्रिम अभिज्ञात्य की सतह को तोड़ने का उपक्रम चार प्रमुख कवियों ने किया दिनकर बच्चन, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' और नरेंद्रशार्मा। इनमें भाषा के स्तरों की भिन्नता के सबसे अधिक आयाम दिनकर में उपलब्ध होते हैं। दिनकर के लिए भाषा मात्र माध्यम नहीं है वह उनकी कविता की वक्तृत्व शक्ति की भी वाहक भी। छायावादी कवियों की सघन और पारदर्शी भाषा की प्रतिक्रिया में दिनकर द्विवेदी युगीन इतिवृत्तकला और छायावादी सुकुमार माने जायें।

पीराणिक —

ऐतिहासिक कथानकों पर आश्रित काव्यों में भी दिनकर की भाषा बहुतसीम रही है। इसका प्रमुख कारण दिनकर की इतनात्मक स्थिति थी। उर्वशी में क्रम का बन्द था। इसी ने दिनकर के साहित्य में काम आया उत्पन्न किया दिनकर ने क्रम को मानवीय शक्ति के रूप में क्रियांकन किया। क्रम के इस क्रियांकन को क्रमसूत्र चालू शब्दों का प्रयोग न कर दिनकर ने तत्सम—बहुस्त्र भव्य भाषा का प्रयोग किया है। कुशुक्त्र में दिनकर सामन्तशाही के विशेष स्वरूप और युद्ध (महाभारत) का क्रियांकन में भी दिनकर की भाषा ‘कुशुक्त्र’ में सहज गतिमयी प्रसादपूर्ण भाषा हो गई। रसबन्ती दिनकर की रचना शास्तिकालीन रचना थी। इसमें दिनकर ने महुर शब्दावली का प्रयोग किया है नये सुभाषित तथा एनाकी जैसी कविताओं में चलती हुई भाषा सैली का प्रयोग किया है। इसे सावित्री सिर्फ की छाया में परिलक्षित करिये—“उर्वशी” का तत्सम—बहुस्त्र भव्य भाषा, ‘कुशुक्त्र’ की सहज गतिमयी प्रसादपूर्ण भाषा, ‘रसबन्ती’ की महुर शब्दावली और नये सुभाषित तथा एनाकी जैसी
कविताओं की चलती हुई भाषा, तीनों के रूप अलग अलग है।'1 प्रबन्ध काव्यों और स्पष्ट कविताओं दोनों में उन्होंने जहाँ एक और भाषा को संस्कृत के अभिज्ञात्व में पागल पौराणिक और ऐतिहासिक श्रोतों को विश्वसनीयता प्रदान की है। वही भाषा में आधुनिक युग की रचना धर्मिता को व्यक्त करने का प्रयास भी दिनकर ने पूरी ईमानदारी से साथ किया है।

उर्वशी और कुरुक्षेत्र दोनों पौराणिक कथानकों पर आधित प्रबन्ध काव्य में कविता और चित्रण का मणिकांचन योग है ऐसी स्थिति में दिनकर के उर्वशी और कुरुक्षेत्र की भाषा में एक रूपता होनी चाहिए थी जो नहीं मिलती है। 'उर्वशी' की भाषा का उदाहरण देखिये—

"हम त्रिलोकवासी, त्रिकालचर, एकाकार, समय से भूत, भविष्यत, वर्तमान, तीनों के एकार्ण में तैर रहे संपूर्ण सभी विचित्र, कणों, अणुओं से समा रही धड़कने उर्वशी की अप्रभित त्रिमुख में काल—रचना भर रहा इमारी सासों के सामने से।"2

यहाँ कथा का सन्दर्भ पौराणिक होने तथा दर्शन की सहज गंभीरता के कारण भाषा में संस्कृत शब्दों का अभिज्ञात्व अपनी सम्पूर्ण तेजस्विता के साथ खिलमान है। किन्तु कुरुक्षेत्र में कथा का आधार पौराणिक होते हुए भी वहाँ—भाषा में शब्दों की पच्चीकारी नहीं मिलती। वहाँ विचार के प्रवाह के साथ भाषा भी इतनती हुई बहती है।

"साक्षात मनुष्य यदि विज्ञान है तलवार,"

तो इसे दे फॅंक, तजकर मोह, स्मृति के पार।

1. सुग्रीव दिनकर—सावित्री सिन्हा, पृष्ठ—224
2. उर्वशी — दिनकर, तुलिय अध्याय, पृ 55
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी अज्ञान।
फूल-काँटों की तुझे भी नहीं पहचान।”

यहाँ भाषा परस्पर से अर्जित नहीं बल्कि पारम्परिक कथ्य को आधुनिक भाषा प्रदान की गई है। भाषा यहाँ पारम्परिक कथ्य की सीमाओं का अतिरिक्त करके आधुनिक युग-सन्दर्भों को वहन करने में समर्थ हो सकी है।

दिनकर की भाषा में कही आयास नहीं है। “वे किसी भी परिस्थिति पर तुरंत प्रतिक्रिया करते हैं। उनकी कविता उन्हीं प्रतिक्रियाओं का कलात्मक प्रतिफलन भर है,” यही कारण उनकी काव्य भाषा में कहीं दुर्गोष्टता नहीं होती या उलझन नहीं होती। यही कारण है कि वे हिंदी के नवीनतम कवि हैं जो प्रथमक स्तर के व्यक्ति तक पहुँचे हैं।

जिस हस्ताक्षर भाषा से उत्पन्न काव्य की रचना हुई। उसे पूर्णतया निभाने के लिए जिस प्रकार की भाषा का उपयोग विचार प्रवाह को आगे बढ़ा सके उसका प्रयोग दिनकर जी ने किया है। भाषा की सतह को लोहड़कर नवीन काव्य भाषा का सूत्रपात दिनकर जी ने अपने काव्य में किया है। नवीन काव्य भाषा का सूत्रपात की सफलता के लिये दिनकर ने गुरुत्व दायरक का निर्वाह करने हेतु नवीन और ताजा मुहावरों की रचनाकर भाषा में प्रयोग किया है। यथा—

क) “एक घाट पर किस राजा का रहता बंधा प्रणाय है।”

ख) “अक्षे सिंह आदर्श दूधते व्यंग्य बाण सहते हैं।”

1. कुंशेत्र – दिनकर, पृष्ठ 71
2. दिनकर : (जीविनी और व्यक्तित्व– साहित्री सिन्हा) – मन्नदीनाथ गुप्ता, पृष्ठ 9
3. उर्वशी– दिनकर, पृष्ठ 22
4. कुंशेत्र–दिनकर, पृष्ठ 48
ग) “जिस नर की बाँह गयी मैंने”

उनके पौराणिक –ऐतिहासिक काव्य में सामान्यतः अभिधा और लक्षणा का प्रयोग हुआ है। उर्वशी में अभिधा शक्ति भी सौन्दर्य और मिठास में प्रबल आई—

“कुसुम और कामिनी बहुत सुन्दर दोनों होते हैं, पर तब भी नारियों श्रेष्ठ हैं कहीं कान्त कुसुमों से, क्योंकि पुष्प है मूक और रूपसी बोल सकती है, सुमन, मूक सौन्दर्य और नारियों सवार सुमन हैं।”

‘परशुराम की प्रतीक्षा’ से एक लक्षण का उदाहरण लीजिए—

“है जिन्हें दौंत उनसे उदन्त कहते हैं, यानि सूरों को देख सन्त कहते हैं, तुम तुझा दौंत क्यों नहीं पुष्प पाते हो, यानि तुम भी क्यों भेड़ न पाते हो, पर कौन शेर भेड़ों की बात सुनेगा, जिन्दगी छोड़ मरने की बात चुनेगा।”

सबसे चमक दिनकर की छायावादी भाषा की जटिलता की गतिक्रिया में उपयुक्त काव्य भाषा के विवाहक थे। ‘यदि यह कहा जाय तो उल्लुक कि न होगी कि दिनकर जी ने छायावाद की लक्षणिक शैली के दूराच्छ, असपूत्ता...”

1. रशिमथी दिनकर, पृष्ठ-41
2. उर्वशी—दिनकर, पृष्ठ 84
3. परशुराम की प्रतीक्षा—दिनकर, पृष्ठ 26
और अल्पधिक साहित्यकला समर्थ भाषा का निर्माण किया जिसके कारण छायावाद परवर्ती कवियों में दिनकर का स्थान शीर्ष पर रखा जाता है।

**बिम्बविद्यान—**

दिनकर के अतृप्त काम ने ही साहित्य के सारे क्षेत्र में हस्ताक्षरक
स्थिति उत्पन्न की है। दिनकर की एक प्रेमिका थी, सर्व सुन्दरी। उसका
विवाह सजातीय लड़के से हुआ। दिनकर का प्रेम स्वार्थ के वसीमूल नहीं था।
उनका शुद्ध प्रेम था। दिनकर अपनी प्रेयसी को न भूल सके। प्रेयसी को ही
उर्वशी के रूप में स्वर्ग से भूतल पर उतारा। बिम्ब विद्यान के अंतर्गत दिनकर
के प्रबंध कवयों और सफुट कवयों में ‘उर्वशी’ ही सर्वश्रेष्ठ रचना है।

दिनकर के बिम्बविद्यान में बिम्बों का महत्वपूर्ण स्थान है। ‘काव्य की
भूमिका’ में दिनकर ने काव्य में बिम्बों की स्थिति पर विस्तार से विचार किया
है। दिनकर के अभिमतानुसार ‘कहानी में जो स्थान मनोविज्ञान का है, कविता
में वही स्थान चित्र को दिया जाता है।’

**2** वे चित्रालक्तको का एक मात्र
शाश्वत गुण के रूप में स्वीकार करने में नहीं हिचकते हैं।

उनके पौराणिक-अद्वितीय कथानकों पर आधित प्रबंध कवयों और सम्बन्ध सफुट
कविताओं में सर्वाधिक रमणीय बिम्ब उर्वशी में मिलते हैं। इसका प्रमुख कारण
उनकी प्रेयसी है। जब उनकी प्रेयसी दिया स्वान लोक में आकर बसती थी,
उसी समय दिनकर की ‘उर्वशी’ पर कलम चलती थी। ‘वस्तुतः उर्वशी’ की
बिम्ब-योजना अत्यन्त समृद्ध है— विराट और कोमल, उदास और मधुर बिम्बों
का ऐसा अपूर्व संकलन आधुनिक युग के बहुत कम कवयों में मिलता है।

1. युगाचारण दिनकर—सावित्री सिंह, पृष्ठ–233
2. काव्य की भूमिका—दिनकर, पृष्ठ–9
3. काव्य की भूमिका—दिनकर पृष्ठ 101
सम्पूर्ण काव्य ही रंगीन चित्रशाला है जिसमें शब्द और अर्थ की व्यंजनाओं से अंकित नक्षत्र, रेखाचित्र, रंगचित्र, तैलचित्र और विराट भित्तिचित्र जगमग कर रहे हैं।¹ सौन्दर्य निरूपण की प्रक्रिया में निम्नलिखित विम्ब कितना मनोहारी बन पड़ा है—

“इन कपोलों की ललाई देखते हो
और अघरों की हंसी यह कुन्द—सी, जूही—कली—‘सी,
गोर चम्पक यष्टि सी यह देह शल पुष्पाभरण से,
स्वर्ग की प्रतिमा कला के स्तप्न—साँचे में ढली सी।”²
कहाँ—कहाँ कवि ने मौलिक विम्बों का आकर्षक उपयोग किया है—
“खड़ा सिहरता रहता में आनन्द—विकल उस तरुणा,
जिसकी डालों पर प्रसन्न गिलहरियाँ किलक रही हों,
या पत्तों में छपी हुई कोयल कूजन करती हो।”³

वस्तुत: उर्वशी में दिनकर की विम्ब निर्माण क्षमता और विम्ब—आयोजन क्षमता दोनों की ही चरम सिद्धि है। ‘उर्वशी’ का काव्यानुमान इस प्रकार की बिम्ब योजना के लिए उपयुक्त भी था। किन्तु कुर्खेत्र और रशिमर्थी में भी बिम्बों की स्थिति कम सौन्दर्यमय नहीं है। जैसे द्रोपदी के प्रतिशोधाल्क व्यक्तित्व का अंकन दृष्टव्य है—

“और जब ब्रह्म प्रत—मुक्त—वेश द्रोपदी,”

1. नगोद्भु, उर्वशी: कला और विचार— बोध— वचन देव कुमार (शं) उर्वशी विचार और विश्लेषण, पृ 14
2. उर्वशी— दिनकर, पृष्ठ 48
3. उर्वशी— दिनकर, पृष्ठ 41
मानवी अथवा ज्वलित, जाग्रत शिखा प्रतिशोध की,
दौँत अपने पीस अन्तिम क्रोध से,
आदमी के गर्म लोहे से चुपड़,
रक्त—वेणी कर चुकी थी कोशारी,
केश जो तेरह बरस से थे खुले।"¹

वर्तुळ: प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत आलोच्य रचनाओं में बिम्बों से मौलिक प्रयोग अत्यन्त विरल हैं। किन्तु भाषा की आवेगमूलक प्रकृति के कारण ये बिम्ब बासी नहीं प्रतीत होते।

प्रतीक विश्लेषण—

दिनकर जी ने प्रतीकों का उपयोग अपने काव्य में उतना नहीं किया जितना छायावादी कवियों में मिलता है। यह प्रस्वाभाविक भी था क्योंकि दिनकर छायावाद की काव्य भाषा के कूदासे को भेदकर उसके काव्यानुभव को मैथिलीशरण गुरु जी की भाषा में बौंधना चाहते थे। किन्तु परम्परा की विशाल चेतना को अपनी मानसिकता से संयुक्त करने के लिए प्रतीकों का सफल प्रयोग किया है। सामान्यतः और विदेशी सत्ता को उखाड़ फैंकने के लिए उन्होंने ‘कुरुक्षेत्र’ के कथानक को चुना। अंग्रेजों का शोषण और सामना का किसान और मजदूरों पर अत्याचार ने उनको उनके विरुद्ध कर दिया था। इसी दृष्टान्तिक विचार में ‘कुरुक्षेत्र’ का जन्म हुआ।

‘कुरुक्षेत्र’ की प्रतीकात्मकता उसके चरित्रों को लेकर है। भीष्म जहाँ हमारे समक्ष "यथार्थान्मुख नयाय भाषाना"² के प्रतीक रूप में आते हैं। युधिष्ठिर

1. कुरुक्षेत्र—दिनकर, पृष्ठ—3
2. दिनित्रित राष्ट्र कवि—कामेश्वर शर्मा पृ 61

172
अपने चरित्र से आदित्य का प्रतीकत्व अर्जित करते हैं। "कुरुक्षेत्र उस घर्म—युद्ध का प्रतीक है जो स्वतं रखा, ज्यलित प्रतिशोध और पीरूष की जागृति के नाम पर अनिवार्य बन जाता है।"¹

रशिमथ्री में कवि ने कर्ण को "कलकित मानवता का मूक प्रतीक" माना है। 'रशिमथ्री' में कथा कर्ण के चारों ओर प्रभूत है। दिनकर का सवर्ण के प्रति द्वन्द्वात्मक रूख था। अस्पृश्यता के लिए दिनकर इसी सवर्ण वर्ग को मानते थे। इसी कारण दिनकर ने 'कलकित मानवता' ऐसे शब्द का प्रयोग किया। ऐसे अपनी समस्त में रशिमथ्री द्विवेदी युगीन प्रबंध काव्य-परम्परा की ही एक कहाँ है। कर्ण के चरित्र में दिनकर ने उन दलित जनों की पीढ़ा अभिव्यक्ति की है जो सब प्रकार से समृद्ध होते हुए भी जाति और कुल की हीनता के कारण उपेक्षित समझे जाते हैं।

"मैं उनका आदर्श, कहाँ जो व्यथा न खोल सकेंगे, पूछेगा जग, किंतु, पिता का नाम न बोल सकेंगे। जिनका निखिल विश्व में कोई कहाँ न अपना होगा। मन में लिये उमंग जिन्हें विरक्त कलपना होगा।"²

प्रतीक-विधान की दृष्टि से दिनकर की सबसे सफल प्रबंध-रचना 'उर्वशी' है। पुरुरवा और उर्वशी यद्यपि पौराणिक पात्र हैं, किंतु उनमें कोषगत अर्थ के माध्यम से दिनकर ने अपनी मानसिक द्वन्द्वात्मक स्थिति का निराकरण किया है। दिनकर ने यह माना है कि "मेरी दृष्टि में पुरुरवा सनातन नर का प्रतीक है और उर्वशी सनातन नारी का।"³ किंतु उर्वशी को कवि ने कोषगत

1. दिम्ययमित राष्ट्र कवि— कामेश्वर शर्मा, पृष्ठ 61
2. रशिमथ्री दिनकर, पृष्ठ भूमिका (ग)
3. उर्वशी—दिनकर पृष्ठ— ख
अर्थ के आधार पर असीमित वास्तव का प्रतीक माना है और पुरुषादि..............
. रूप, रस गंध, स्पर्श और शब्द से मिलने वाले सुखों से उद्धृतित मनुष्य के
रूप में हमारे समाने आता है।”

अनूठा काम के प्रतीक दिनकर ने अपने इस हिदायत के बिचार के
अनुरूप पुरुषा को उत्पन्न किया। दिनकर का ‘कामाध्यात्म’ इसी भवन के
फलस्वरूप है। दिनकर ने पुरुषा और उर्वशी के माध्यम से नारी और पुरुष
की शारीरिक काम-चेतना को व्यक्त करना चाहा है तो दूसरी ओर उर्वशी के
माध्यम से शारीरिक सम्बन्धों की द्वन्द्वीय आकांक्षा तथा पुरुषा में विद्यमान
देवता की तुषा के विरोधाभाषा द्वारा आधुनिक बोध को सार्थक सन्दर्भ देने का
प्रयास किया है। उर्वशी यह मानती है कि नारी और पुरुष का प्रेम कोई अमूर्त
आदर्श नहीं बल्कि वह शारीरिक सम्बन्धों की सुदृढ़ नींव पर आधारित है।
दूसरी ओर पुरुषा मांसल प्रेम से अरुप देवता का सन्धान पाना चाहता है,
इसलिए उर्वशी को आलिंगन पाशा में बोध कर भी वह अमूर्त सत्य के सन्धान
का प्रयास करता है। दिनकर जी ‘ओशो’ के दर्शन से प्रभावित मानव थे। हिदाय
अनेक मानसिक स्तर पर मजबूर रहा था। इसी कारण पुरुषा को आलिंगन
के स्थिति में भी ध्यानमग्न होते हुए दिनकर ने दिखाया है। आलिंगन पाशा
में स्त्री-पुरुष दोनों की मानसिक उपस्थिति वहाँ नहीं होती तो सामने उल्ले
को सुख प्राप्त नहीं होगा। इसलिए उर्वशी कई बार प्रभाव मिलन सुख का
अनुभव नहीं कर पाती—

“तन से तुमको कसे हुए अपने दूढ़ आलिंगन में,
मन से, किन्तु विषणु दूर तुम कहाँ चले जाते हों?

1. उर्वशी— दिनकर, पुष्प—ख
बरसा कर पीयूष प्रेम का, आखों से आँखो में
मुझे देखते हुए कहाँ तुम जाकर खो जाते हों?\(^1\)
पुरुषवा का लक्ष्य है—

“रक्त की उत्पत लहरो की परिधि के पार,
कोई सत्य हो तो,
चाहता हूँ, भेद उसका जान लूँ।
पफु से सौन्दर्य की आराधना का व्योम में यदि,
शूरूव की उस रेखा को पहचान लूँ।”\(^2\)

इसी प्रकार प्रथम अंक में रंभा और मेनका के संवाद में भी रंभा जहाँ
अमूर्त अनुभव का प्रतीक बनकर आती है। वहैं मेनका यथार्थ मूलक तथा
मांसल भोग के प्रतीकव को वहन करती है—

“क्या है यह अमरत्व? समीरों का सौरम पीना है,
मन में धूम समेट शान्ति से युग—युग तक जीना है।
पर सोचो तो, मत्य मनुज कितना मछु—रस पीता है,
दो दिन ही हो पर कैसे वह धंधक धंधक जीता है।”\(^3\)

वस्तुतः ‘उर्वशी’ में कवि ने नारी और पुरुष की शाश्वत प्रेम—चेतना को
वाणी दी है। उर्वशी और पुरुषवा का प्रतीकव आधुनिक जीवन के काम
समन्यों के यथार्थ को भी उसी सुन्दरता से वहन करता है जिस सुन्दरता से

1. उर्वशी— दिनकर, पृष्ठ —45
2. उर्वशी— दिनकर, पृष्ठ —45
3. उर्वशी— दिनकर, पृष्ठ —11
वह पौराणिक पुरुषवा और उर्वशी को शास्त्र स्वतंत्र देता है। 'लहरों के राजांसे' के नाम की तरह पुरुषवा का चरित्र भी आधुनिक साहित्य को दिनकर की एक महत्वपूर्ण देन समझी जायगी।

यहाँ दिनकर की एक कविता व्याल विजय की चर्चा इस सन्दर्भ में हम और करना चाहेंगे। भगवान श्री कृष्ण के जीवन में कालिया नाग के दमन की कथा का विशिष्ट महत्व है। सूर आदि कृष्ण भक्तकल्याणों ने अपने ढंग से इस कथा का गायन किया है। दिनकर को वैसे भी शर्प-बिम्ब प्रयोग प्रिय है। डा० विजेन्द्र नारायण सिंह के अनुसार दिनकर के काव्य में 66 से ऊपर शर्प-बिम्ब के प्रयोग है।"¹ किन्तु अपनी व्याल-विजय कविता में उन्होंने कालिया नाग-दमन की पारस्परिक लीला से हट कर उसमें प्रतीक्त के नये आधुनिक धरातल खोजे हैं। यहाँ कृष्ण पारस्परिक कृष्ण नहीं है बल्कि आधुनिक लघु मानव हैं जो अपनी लघुता में 'भी विराट हैं' सर्प मनुष्य के मन में स्थिति उस कालुष्य का प्रतीक है जो उसे पशुता की ओर अग्रसर करता है। कृष्ण इस कालुष्य के पुंजीभूत रूप व्याल को अपना फन फैलाने का आदेश देते हैं,

जिससे वे बाँसुरी बजाकर जड़ता में चैतन्य का आधान कर सकें-

"यह बाँसुरी बजी माया के मुकुलित आकुंचन में,
यह बाँसुरी बजी अविनाशी के संवेश गहन में,
अस्तित्वों के अनस्तित्वों में, महा शान्ति के तल में,
यह बाँसुरी बजी शून्यासन की समाधि निरंचल में।
कंप्हिने तेरे समुद्र में जीवन-लहर उठाओं,
तान, वान फन व्याल कि तुज पर में बाँसुरी बजाओं।"²

1. दिनकर-पुनरूपमूल्यांकन – विजेन्द्र नारायण सिंह, पृष्ठ 56
2. नील कुसुम, "व्याल विजय" – दिनकर, पृष्ठ-8
पारम्परिक कृष्ण अपनी सामर्थ्य से विषधर का मान-मदन करते हैं
किन्तु दिनकर के कृष्ण विष के बदले हिंसा का सहारा नहीं लेते बल्कि
कलुणा और शान्ति के अमृत-तत्व से नाग के विष का प्रभावन करना चाहते हैं—

"प्रूक-प्रूक विष—लपट, उगल जितना हो जहाँ हमदय में,
यह बंधी निंगलर, बजेंगी सदा शान्ति की लय में।
पहचाने किस तरह भला तू मिल विष का मत बाला?
मैं हूँ सांपों की पीठों पर कुसुम लादने बाला."¹

वस्तुतः पौराणिक आधार को प्राप्त करते हुए भी कवि ने कृष्ण को
तृप्त आत्मविश्वास से मंदिर जो प्रतीकात्मक आधार प्रदान किया है वह
दिनकर की अहिंसात्मक गांधीवादी विचार धारा के अनुरूप है। हिंसा, हिंसा
से नहीं बल्कि हिंसा, अहिंसा से जीती जा सकती है। इसी का प्रयोग दिनकर
ने उत्तर कविता में किया है।

काव्य रूप

कवि की रचना धर्मिता की प्रवृत्ति के मूल्यांकन का एक महत्वपूर्ण
आधार उसके द्वारा स्वीकार किया गया काव्य-रूप होता है। कवि अपने
काव्यानुभव को जितने जहिल काव्यानुभव में बांध सकने में समर्थ होता है,
उतना ही वह परिपाटी की लील के संशोधन के निकट पहुँचता है।

'कुस्क्रेत्र' में कवि ने यद्यपि पौराणिक कथा-स्रोतों को अपना उपजीवि
बनाया है। किन्तु काव्य-रूप की दृष्टि से परिपाटी की लील को स्वीकार नहीं
किया है। 'कुस्क्रेत्र' में कथा-तथ्य उतना प्रभाव नहीं है जितना 'रघुराधि' में

¹ "भायल विजय" —नीलकुसुम—दिनकर, पृष्ठ 10
मिलता है। यहाँ कथा के प्रवाह की अपेक्षा विचार—तत्व को प्रमुखता मिली है
इसीलिए परस्परागत प्रबंध काव्यों में यह रचना अलग जानपड़ती है। यहाँ न
घटनाओं का घात—प्रतिघात है और न चरित्र—चित्रण का नुकीलापन यहाँ तो
‘दिनकर’ को एक जलती हुई समस्या पर कुछ कहना है। यह उनकी
मानसिक इन्द्रालंक स्थिति की ओर दिनकर की स्वीकारकी है। वे चाहेंगे,
उनके कहने की मीमांसा हो। घटनाओं के आभास मात्र और अभ्यासों के
विभाजन के आधार पर यदि इसे कोई खण्ड काव्य के चौंकें बांधना चाहे
तो बांध सकता है। परन्तु हमारी दृष्टि से कुर्सिशत्र में काव्य और विन्दुन का
जो विलक्षण सामग्री हुआ है, उसके आधार पर ही उसके काव्य—रूप का
निर्धारण होना चाहिए। वस्तुतः यहाँ विचार भावुकता पर अनुशासन रखता है,
और यह वैचारिक औदात्य ही रचना की प्राणकता का आधार है। इसलिए
किसी पारम्परिक सीमा में बांधने की अपेक्षा कुर्सिशत्र को यदि हम ‘विचार—काव्य’
कहे तो अधिक उचित होगा। इस काव्य—रूप निर्धारण से एक ओर तो इस
रचना की विचार—प्रमुखता स्पष्ट हो जाती है, दूसरे उसमें कविता का जो
सुधा हुआ सस्पेक्ट है, वह भी इसमें संकेतित हो गया है।

‘रशिमश्च’ का काव्य—रूप पूर्णतः परस्परागत है। जैसाकि कवि ने
अपनी भूमिका में स्पष्ट किया है कि इस काव्य की रचना में कवि का हदय
उस परम्परा के प्रति मोह से आसक्त रहा है जिसका मैथिलीशरण गुमत करते
हैं।”\[1\]

1. रशिमश्च—दिनकर, पृथ्वीभूमिका पृष्ठ क
आदि वे सभी तत्व उपलब्ध हैं जो महाकाव्य के लक्षण हैं।”1 फिर भी महाकाव्य की मूलभूत चेतना जो समग्रता और परिपूर्णता के साथ युगीन जीवन तथा युग निरपेक्ष शास्त्र जीवन मूल्यों के साथ व्यक्त होती है, रशिमरथी में नहीं है। अतः इसे हम खण्डकाव्य मान सकते हैं।

‘उर्वशी’ का काव्य—रूप निश्चय ही जटिल और मिश्रित है। यहाँ कवि ने नाटक, गीत, प्रबन्ध आदि अनेक काव्य—रूपों का प्रयोग एक साथ किया है। जिस प्रकार पुरुषों और उर्वशी जीवन की दो पृथक प्रवृत्तियों काम और अध्यात्म में समंजस जोड़ना चाहते हैं, उसी प्रकार कवि भी गीत प्रबन्ध और नाटक जैसे विशेष काव्य रूपों में समन्वय स्थापित करना चाहता है। ‘उर्वशी’ के काव्य—रूप में मूलतः गीत का सौकुमार्य है किन्तु प्रतिपाद की दृष्टि से वह महाकाव्य का औदायक लिये हुए है अतः उसे हम ‘गौतिमूलक महाकाव्य’ मान सकते हैं। उस पर नाट्य तत्त्वों का तो केवल आरोप किया गया है। यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि में ‘उर्वशी’ को महाकाव्य नहीं कहा जा सकता, किन्तु विचार—तत्व की प्रबलता और कथा की विशालता के कारण उसमें अनायास ही महाकाव्य गतिमा आ गई है। साथ ही नीति की सुकुमारता के इन्द्र धनुषी रंग भी इस रचना में घुसते रहे हैं, अतः हमने ‘उर्वशी’ के काव्य—रूप को ‘गौतिमूलक महाकाव्य’ माना है।

छन्द विधान—

छन्द काव्य और गद्दी को प्रथम करते हैं। “अन्तस्तु के उमड़ने वाले भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए जब कवि भाषा में लय और स्वर को

1. विजयेन्द्र स्नातक, रशिमरथी, एक विश्लेषण, सावित्री सिन्हा (सं) दिनकर, पृष्ठ—179
संयोजन करता है तब उसमें प्रेषणीयता अपेक्षाकूल अधिक बढ़ जाती है।”

दिनकर की यह विशेषता है कि उन्होंने ब्रज-भाषा के कवित्व और सवैयाँ से जुड़ी सुन्दरमत्रा का परिहार करके अपने दिनकरीय ओज और वैचारिक गरिमा को अभिव्यक्ति प्रदान की है। तथा इस सन्दर्भ में हम सुन्दरी सवैया की चर्चा कर सकते हैं। यह 25 अक्षरों का मात्रिक छन्द है। परम्परा की दृष्टि से इसमें 8 सन्धि और 1 गुरु की व्यवस्था थी किन्तु अब लघु अक्षरों को गुरु कर देने की स्वतंत्रता है। यति का स्थान भी पूर्णत: निर्धारित नहीं रहा किन्तु सन्धि के आधार पर एक निर्धारित तय विधान स्वशय चलता है।

यथा—

“जब गुरु में फूटपड़ी यह आग, तो
कौन सा पाप नहीं किया तूने?
गुरु के बघ के हिस्से शूठ कहा,
फिर काट उमड़िए में ही लिया तूने,
छल से कुरुराज की ज़ोंध को तोड़
नया रण-धर्म चला दिया तूने;
अरे पापी मुमूर्ख, मनुष्य के यक्ष को
चीर सहास लहू पिया तूने।”

यहाँ कवि ने लघु अक्षरों को गुरु कर देने की स्वतंत्रता भी ली है।
और यति के विधान में भी परम्परा का अनुमोदन नहीं किया।

1. दिनकर की काव्य भाषा— यतीन्द्र तिवारी, पृ 341
2. कुरुक्षेत्र दिनकर, पृष्ठ-67
कहीं कहीं कवि ने नवीन छन्दों का निर्माण भी किया है। यदापि इन छन्दों के लंब परंपरागत ही है किन्तु छन्द का विस्तार और संकोच कवि का अपना होता है। ‘गीतिका’ के आधार पर ‘कुशक्षेत्र’ में किया गया 26 मात्राओं का यह अनुक्रम प्रयोग दृष्टिव है—

‘ओ’ युक्तिशिर/ से कहा, ‘तूफान/ है कभी?
किस तरह आ/ ता प्रलय का नाद बहक/रता हुआ
काल—सा वन/ में द्रमों को/तोड़ता, झक/झोरता
और मूलो/चाँद कर भू/पर चुलाता, कौंच से
उन सहस्रों/पादयों को/जो कि क्षीणा/धार है?
रुग्ण शाखाएँ/द्रमों की/हर हराकर/टूटती
टूट गिरते। शाखों के/साथ नीङ विह/हंग के;
अंग भर जा/ते बनामी के/निहित तरु/गुल्म से
छिल्ल फूलों/के दलों से/पक्षियों की/देह से।’1

इस प्रकार हम देखते हैं कि ‘कुशक्षेत्र’ और ‘रशिमरथी’ में कवि ने जहाँ छन्दों के सन्दर्भ में अपनी परम्परा मूलक दृष्टि का परिचय दिया है, वहाँ छन्दों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने में भी उसने संकोच नहीं किया है। इस प्रकार छन्द—विधान की  
दृष्टि से कवि ने छायावादी और द्विद्वे युगीन का 
विलक्षण सामंजस्य प्रस्तुत किया है। छायावादी कवियों की सघन और 
पारदर्शी भाषा की प्रतिक्रिया में दिनकर द्विद्वे युगीन इतिविरतत्कला एवं 
छायावादी सुकुमारता—दोनों की खमीर लेकर आए। आलोच्य काव्य में दिनकर

1. कुशक्षेत्र दिनकर, पृष्ठ 11
की भाषा बहुस्तरीय रही है। उर्फ़ी में आमिज्ज्यपरक भाषा का आदर्श रूप दीख पड़ता है। जो ‘कुरुक्षेत्र’ की सहजगतीय प्रसादपूर्ण भाषा हमें आकर्षित करती है। ‘रसबन्ती’ की माधुर्य-गुण-सम्पन्न कोमल छन्दाबली और नये सुभाषित’ तथा एनाकी जैसी कविताओं को चलती हुई भाषायें उनकी भाषा के अलग-अलग रूप है। सूक्तियों का बहुत सुन्दर उपयोग कवि ने किया है।
इस प्रकार उन्हें हम सहज ही एक नवीन काव्य-भाषा का विधायक मान सकते हैं।